शोध मंथन, 2017 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X, Impact Factor 3.8942 (ICRJIFR)
UGC Aproved Journal No. 40908

नारीवाद : राजनीतिक अवधारणा

डॉ0 राजीव कुमार

एसो0 प्रोफे0, राजनीति विज्ञान विभाग, आर0एस0एस0 (पी0जी0) कॉलिज, पिलखुवा

सारांश

नारीवाद समाज विज्ञान की अकादमिक बहसों एवं विमर्ष का प्रमुख मुद्दा रहा है। समकालीन नारीवाद सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कषतिक, लैंगिक, नैतिक एवं नस्लीय आयामों को स्वयं से समाहित किये हुए है। राजनीति विज्ञान में नारीवाद की तीन प्रमुख धाराओं उदारवादी नारीवाद, समाजवादी मार्क्सवादी नारीवाद एवं आमूल परिवर्तनवादी, नारीवाद को मुख्यतः रेखांकित किया जाता है। उदारवादी नारीवादी परिप्रेक्ष्य ने स्वतन्त्रता और समानता के लोकतान्त्रिक मूल्य और महिला की अधीनता के मध्य अन्तर्विरोध रेखांकित किया है। समाजवादी नारीवाद ने पूजीवादी पितष्सत्ता के स्वास्थ्य को समझने एवं बदलने का प्रयास किया है। रेडिकल नारीवादियों के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की यौनिकता और प्रजनन की उनकी क्षमता दोनों महिलाओं की षक्ति और उनके उत्पीड़न की जड़ में होती है। सामान्यतः नारीवाद का उद्देष्य नारी को प्रमुख के समान बनाना नहीं है, अपितु प्राकृतिक विभेय को स्वीकार का उनकी सामर्थ्य का सम्पूर्ण उपयोग करने तथा समाज के द्वारा प्रस्थापित कृत्रिम असमानताओं को दूर करने का प्रयास है।

बीज शब्द– *उदारवादी नारीवाद, समाजवादी–मार्क्सवादी नारीवाद, आमूल परिवर्तनवादी नारीवाद, उत्तर संरचनावाद, उत्तर आधुनिकतावाद।*

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः

डॉ0 राजीव कुमार,
''नारीवाद : राजनीतिक अवधारणा'',
शोध मंथन जून 2017,
पेज सं0 87–95
http://anubooks.com/?page_id=2030
Artcile No.15(SM422)

प्रस्तावना

मानव समाज में नारी का महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः नारी के बिना सृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती। भारतीय संस्कृति में नर व नारी को जीवनरूपी रथ के दो पहिये माना गया है। ये पहिये ही जीवन को सही गंतव्य की ओर ले जाते हैं, परन्तु एक भी पहिए के रूकने या टूटने से रथ रूपी जीवन गतिहीन हो जाता है। परन्तु नर व नारी के सम्बन्धों के बीच समानता का अभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है क्योंकि पुरूष सदैव ही स्त्री को अपने आधीन रखता चला आ रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान, धर्म, शिक्षा, संस्कृति एवं कला के क्षेत्र में चाहे जितनी भी प्रगति हुई हो परन्तु सामाजिक, राजनीतिक दृष्टि से आज भी महिलाओं की स्थिति सोचनीय बनी हुई हैं। मानव समाज सदा ही अधिकाधिक आधुनिक होने का दावा करता है फिर भी नारीवादी मानते है कि सभी समाजों की महिलाओं का शोषण होता रहा है।

नारीवादी विचारों का आरम्भ इस विश्वास के साथ होता है कि स्त्रियाँ पुरूषों की तुलना में अलाभ की स्थिति में है और उसका प्रमुख कारण शारीरिक विभिन्नता से उत्पन्न नहीं है अपितु वे कारण हैं जो कृत्रिम है, समाज द्वारा निर्मित है और जिन्हें चुनौती दी जानी चाहिए व परिवर्तित करना चाहिए। एक राजनीतिक विचारधारा के रूप में यह स्त्रियों की समस्याओं को राजनीतिक समस्याओं का केन्द्र मानती है।

नारीवाद या नारी अधिकारवाद की मुख्य मान्यता यह है कि समाज में लिंग (Gender) के आधार पर शक्ति का विस्तृत प्रयोग किया जाता है। यह सिद्धान्त पितृतन्त्र या पितृसत्ता (Patiarchy) को सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था का प्रधान लक्षण मानता है। यह पुरूष प्रधान समाज के प्रति विद्रोह का शंखनाद है।

पितृसत्ता जिसके जरिए अब संस्थाओं के एक खास समूह को पहचाना जाता है, को 'सामाजिक संरचना और क्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें पुरूषों का स्त्रियों पर वर्चस्व रहता है और वे उनका शोषण और उत्पीड़न करते है।[1]

पितृसत्ता की सबसे संपूर्णात्मक और उपयोगी परिभाषा गर्डा लर्नर ने दी है, उनके सूत्रीकरण के अनुसार, ''पितृसत्ता परिवार में महिलाओं और बच्चों पर पुरूषों के वर्चस्व की अभिव्यक्ति और संस्थागतकरण तथा सामान्य रूप से महिलाओं पर पुरूषों के सामाजिक वर्चस्व का विस्तार है। इसका अभिप्राय है कि पुरूषों का समाज के सभी महत्वपूर्ण सत्ता प्रतिश्ठानों पर नियन्त्रण रहता है और महिलाएँ ऐसी सत्ता तक पहुँच से वंचित रहती है।'' वह यह भी कहती है कि इसका यह अर्थ नही है कि ''महिलाएँ या तो पूरी तरह शक्तिहीन है या पूरी तरह अधिकारों, प्रभाव और संसाधनों से वंचित है।''[2]

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरूशों के बराबर स्त्रियों के अधिकारों के समर्थन को नारीवाद या स्त्रीवाद का नाम दिया गया है। इसकी व्याख्या दो रूपों में की जा सकती है। एक राजनीतिक विचारधारा के संकुचित अर्थ में, यह महिलाओं का समानता के लिये किया गया एक सामाजिक राजनीतिक आन्दोलन है जो लिंगवादी सिद्धान्त अर्थात पुरूष प्रभुत्व और सामाजिक–राजनीतिक

शोषण की प्रथा की समाप्ति पर बल देता है। विस्तृत अर्थो मे नारीवाद कई भिन्न किन्तु अर्न्तसम्बन्धित संकल्पनाओं का एक पुंज है जिसका प्रयोग लिंग की सामाजिक–राजनीतिक व आर्थिक यथार्थता तथा लैंगिक असमानता की उत्पत्ति, प्रभाव व परिणामों के अध्ययन, विश्लेषण एवं विवेचन में किया जाता है।

राजनीतिक अवधारणा

एक राजनीतिक अवधारणा के रूप में नारीवाद 20वीं शताब्दी की देन है। समकालीन संदर्भ में नारीवादी आन्दोलन 1960 के दशक के पश्चात् विभिन्न रूपों में उभरते रहें हैं और आज यह नारीवादी आन्दोलन लगभग सभी देशों (विकसित एवं विकासशील) में न्यूनाधिक रूप में फैल गया है। परन्तु स्त्री–पुरूष की सापेक्ष स्थिति से सम्बन्धित विवाद चिरकाल से चला आ रहा है। प्राचीन यूनानी दार्शनिकों में प्लेटों ने संरक्षक वर्ग के अन्तर्गत स्त्री–पुरूष की समानता स्थापित की थी। प्लेटो लड़के–लड़कियों की समान शिक्षा की वकालत करता है। प्लेटों को शारीरिक अन्तर छोड़कर उनकी क्षमता में कोई अन्तर दिखाई नही देता। इस प्रकार उन्होंने यूनान में स्त्री की गौण स्थिति की सूक्ष्म आलोचना की। राजनीति में महिलाओं की हिस्सेदारी एरिस्टोफेंस (447–385 ई0पू0) के सुखन्तों में से एक मुख्य विषय था। पार्लियामेन्ट में स्त्रियों में स्त्रियों की स्थिति पर 393 ई0पू0 में ही विचार किया गया था। प्लेटो एरिस्टोफेंस के ही पदचिन्हनों पर चले।[3]

रिपब्लिक में प्लेटों स्त्रियों की विधायक और शासक बनाना चाहते थे। प्लेटो की योजना इस मान्यता पर आधारित थी कि स्त्री और पुरूष प्राकृतिक स्वभाव और क्षमताओं में समान थे। उनके सिद्धान्त में दो विचार प्रमुख थे, परंपरागत विवाह का सुधार और स्त्री मुक्ति। पारंपरिक विवाह महिलाओं को दासी बनाकर रखता था। उन्होंने विवाह को आध्यात्मिक मिलन या आपसी आदर या प्रेम पर आधारित मानने से इंकार कर दिया। लेकिन विवाह मानव जाति की निरंतरता के लिये आवष्यक था इसलिए सन्तानोत्पत्ति के लिये उन्होंने अस्थाई यौन सम्बन्धों की वकालत की। उन्होंने स्त्रियों को बच्चों के लालन–पालन की जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया और बच्चों की देखभाल का दायित्व राज्य को सौंप दिया।[4] परन्तु अरस्तू ने पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की हीनता पर बल देते हुये उन्हें दासों के समकक्ष रखा था। प्राचीन भारतीय ग्रन्थ मनुस्मृति के अन्तर्गत एक ओर कहा गया है कि–'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' (जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता विराजमान होते है।) तो दूसरी ओर यह घोषित किया गया कि–'न नारी स्वातन्त्रयमर्हति' (नारी स्वतन्त्र होने योग्य नहीं है।) परन्तु प्राचीन काल या मध्यकाल में नारी की हीन स्थिति के विरूद्ध किसी आन्दोलन का संकेत नहीं मिलता।

1960 के दषक तक लिंग असमानता का राजनीतिक महत्व नहीं माना जाता था स्त्री और पुरूष के भेद को एक सामाजिक समस्या के रूप में अवश्य स्वीकार किया जाता था। यह एक सामान्य सी अवधारणा थी। स्त्री और पुरूष में शरीरशास्त्र के अनुरूप भिन्नताएँ हैं। वे असमान न होते हुए भी दोनों को समाज में अलग–अलग प्रकार के कार्य करने के लिये उपयुक्त बनाती हैं, इसलिए स्त्रियाँ अपने घर के कार्यो के लिए उपयुक्त हैं और पुरूष अपनी शारीरिक क्षमताओं और अन्य पुरूषोचित गुणों के कारण बाहर समाज में कार्य करने के लिये उपयुक्त है।

राजनीतिक चिन्तन में स्त्रियों के प्रति यह चिंता कि वे समाज में समान स्थान प्राप्त कर सकें केवल बीसवी शताब्दी की देन नहीं है। 1405 में इटली में छपी पुस्तक 'बुक ऑफ द सिटी ऑफ लेडीज' में आधुनिक नारीवाद के कई विचारों का पूर्ववर्ती विवरण मिलता है। इसमें लोकप्रिय स्त्रियों की जीवनचर्या और सफलताओं के सन्दर्भ में स्त्रियों की शिक्षा और राजनीतिक अधिकारों की चर्चा की गयी है। ज्ञात महिलावादी आन्दोलन के इतिहास की शुरूआत मूलतः फ्रांस की क्रान्ति के आदर्शो में छुपी है। इस क्रान्ति ने नारीवाद की लहर को उत्पन्न किया और महिलाओं को क्रान्ति में भाग लेने की प्रेरणा दी।

सन् 1792 में प्रकाषित 'मेरी वोल्स्टोन क्राफ्ट' के द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'विंडीकेशन ऑफ द राइट ऑफ वूमेन (महिलाओं के अधिकारों का समर्थन) ने नारीवाद के विचारों को जागृत किया। इस पुस्तक में समानता के महिला अधिकारों पुरजोर समर्थन किया गया। मेरी वोल्स्टोन क्राफ्ट का तर्क था कि महिलाओं को राजनीतिक अधिकारों से वंचित करने का कोई तार्किक आधार नहीं है। अगर महज तार्किकता ही राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग करने के मामले में व्यक्ति की क्षमता का पैमाना है तो महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में सहभागिता से वंचित करने का काई आधार नहीं है।[5] उन्नीसवीं शताब्दी के कई महिला समर्थक इसके लिये लड़े तथा स्त्रियों के लिये विद्यालय तथा महाविद्यालय की स्थापना की। लड़कों के महाविद्यालयों तथा पुरूषों के व्यवसाय में स्त्रियों को प्रवेश दिलवाया। 1789 में फ्रांस की क्रान्ति में 'पुरूष और नागरिकों के अधिकार की घोषणा' में सभी व्यक्तियों के लिये समानता की बात उठाई तब महिलाओं को कोई अधिकार नही मिलें। जब 1791 में घरेलू पुरूष नौकरों को नागरिक अधिकार दिये गये, तब महिलाओं ने नागरिकता से वंचना का दर्द महसूस किया। ओलम्पी द बाउज ने 'महिलाओं के अधिकारों का वैकल्पिक घोषणा' पत्र जारी कियाः

'महिलायें स्वतन्त्र रूप से जन्मी है और उनके अधिकार पुरूष अधिकारों के समान है . ..... कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति होना चाहिए, सभी नागरिक, पुरूष हो या स्त्री की, इसे बनाने में हिस्सेदारी होनी चाहिए .....महिलाओं को फांसी के तख्ते पर जाने का अधिकार है तो उसे संसद में भी जाने का अधिकार होना चाहिए।'' इसलिए जान लैंडस कहती हैं कि क्रान्ति महिलाओं के खिलाफ की गई, न कि सिर्फ उनके बिना।[6] क्रान्ति का उद्देश्य केवल पुरूषों के गणतन्त्र की स्थापना था। बाद में कानूनी सुधारों द्वारा स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धी व्यैक्तिक अधिकारो तथा तलाक देने की स्वीकृति ने स्त्रियों की प्रस्थिति में भारी परिवर्तन ला दिया।

19वीं शताब्दी में स्त्री आन्दोलन एक संगठित रूप लेने लगा, जिसमें स्त्रियों की दषा को सुधारने के लिये पुरजोर आवाज उठी। इसमें प्रमुखता से बात उठी कि स्त्रियों को पुरूशों के समकक्ष कानूनी एवं राजनीतिक अधिकार मिलने चाहिए। स्त्रियों को वोट देने के अधिकार को सबसे महत्वपूर्ण माना गया, क्योंकि ऐसा होने पर स्त्रियाँ अपने विरूद्ध होने वाली असमानता की नीतियों को समाप्त कर सकेंगी। इन आन्दोलनों का कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से वे राष्ट्र थे, जिनमें राजनीतिक प्रजातन्त्र की स्थापना हो चुकी थी और जहाँ मत देने के अधिकार में विस्तार हो रहा था। भारत में भी उन्नीसवीं शताब्दी में कुछ समाज सुधारकों द्वारा महिलाओं की प्रस्थिति में

सुधार लाने का यत्न किया गया। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी दयानन्द, श्रीमति ऐनी बेसेन्ट के अतिरिक्त थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन जैसी अनेक संस्थाओं ने स्त्री शिक्षा तथा अन्य समस्याओं के समाधान में योगदान किया।

1840 के दशक में एक लोकप्रिय सैनेका फाल्स कन्वेंषन हुआ, जिससे अमेरीका की स्त्रियों के अधिकारो के आन्दोलन की षुरूआत मानी जाती है। इसमें एलिजाबेथ केंडी स्केंटन द्वारा लिखे गये भावनाओं के घोषणापत्र को स्वीकार किया गया, जिसमें अमेरीका के स्वतन्त्रता के घोषणा पत्र की भाषा का उपयोग कर स्त्रियों के मत देने के अधिकार की वकालत की गई। इसी प्रकार 1869 में स्त्रियों की मत देने के अधिकार की एक राष्ट्रीय एसोसिएशन की स्थापना हुई। इस प्रकार के कई एसोशिएशन धीरे–धीरे यूरोप में भी बनने लगें। 1867 में ब्रिटेन की हाउस ऑफ कॉमन्स में स्त्रियों को मत देने सम्बन्धी संशोधन बिल को अस्वीकार कर दिया गया। लेकिन इस प्रकार की मांग सभी विकसित देशों में उठने लगी।

जॉन स्टुअर्ट मिल ने अपनी एक महत्वपूर्ण कृति 'सब्जेक्शन ऑफ वीमेन' (स्त्रियों की पराधीनता) (1869) के अर्न्तगत यह तर्क दिया कि स्त्री–पुरूष का सम्बन्ध मैत्री पर आधारित होना चाहिए, प्रभुत्व पर नहीं। मिल ने विशेष रूप से विवाह–कानून में सुधार और स्त्री मताधिकार पर बल देते हुए सुयोग्य एवं प्रतिभाशाली स्त्रियों को शिक्षा एवं समान अवसर प्रदान करने की वकालत की। आजादी और आत्म निर्णय मिल की रचनाओं में दो प्रमुख विषय है। आजादी सबसे मूल्यवान होती है। स्त्री पीड़ित होती है और उसे समाज द्वारा अपनी क्षमताओं के प्रदर्शन का मौका नहीं मिलता। स्त्रियों की स्थिति दासों से भी गई गुजरी थी। दासों से अलग, वे लगातार डर की स्थिति में बनी हुई।[7]

वोल्स्टोन क्राफ्ट के समान मिल ने यह विचार अस्वीकृत कर दिया कि स्त्री का चरित्र पुरूष से अलग होता है और यह कि स्त्री का स्वभाव कृत्रिम होता है। स्त्रियों की स्थितियों के लिये वर्शो तक उनका दमन जिम्मेदार है न कि उनका स्वभाव। मानव चरित्र का निर्माण परिस्थितियों से होता है, जब तक स्त्रियों को आजादी न मिलें, वे स्वंय को प्रकट नही कर सकती। इसमे समय लग सकता है, लेकिन यह पूर्ण विकास और आजादी से वंचित रखने का कारण नहीं बन सकता।[8]

उन्नीसवीं शताब्दी के मार्क्सवादी प्रवर्तकों ने स्त्री–पुरूष के सम्बन्धों की गहन व्याख्या की है। उन्होंने लिखा है कि परिवार संस्था श्रम–विभाजन का सामान्य स्रोत है जिसमें स्त्री–पुरूष का सम्बन्ध प्रभुत्व एवं निजी सम्पत्ति की धारणाओं को मूर्त रूप प्रदान करता है। देखा जाए तो परिवार के भीतर पुरूष की स्थिति बुर्जवा वर्ग के समान है और स्त्री की स्थिति सर्वहारा के समानान्तर है। मार्क्सवादियों का तर्क है कि जब पूंजीवादी प्रणाली का अन्त हो जायेगा तब निजी गृह कार्य सार्वजनिक उद्योग को सौंप दिये जायेंगे और तभी स्त्रियाँ सार्वजनिक जीवन में पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर सकेंगे।

स्त्री मताधिकार में पहली सफलता 1893 में न्यूजीलैंड में मिलीं, जब स्त्री मतदान को पहली बार स्वीकृति मिलीं। अमेरीका में 1920 में संविधान के 19वें संशोधन द्वारा स्त्रियों को

मतदान का अवसर मिला। हाँलाकि ब्रिटेन में 1918 में स्त्रियों को वोट देने का अधिकार मिला, लेकिन वह पुरूषों के समान महत्व वाला नहीं था। समान माताधिकार प्राप्त करने के लिये उन्हें एक दशक का इन्तजार करना पड़ना पड़ा जब 1928 में ब्रिटेन में समान मताधिकार की शुरूआत की गई। फ्रान्स में स्त्री मताधिकार 1945 में मिला जबकि स्विटजरलैण्ड जैसे राज्य में स्त्रियों को 1971 में जाकर मताधिकार प्रदान किया गया। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही स्त्री–पुरूषों को समान मताधिकार प्राप्त है।

स्त्रियों को मत देने के अधिकार के साथ ही स्त्रियों का आन्दोलन भी कुछ वर्षो के लिये मन्द हो गया, क्योंकि बहुत वर्षो से उनकी महत्वपूर्ण माँग यही थी कि उन्हें राजनीतिक समानता का अवसर मिलें। लेकिन राजनीतिक समानता का अवसर मिलनें पर धीरे–धीरे यह बात स्पष्ट हुई कि इसमें स्त्रियों की समस्या का समाधान नहीं हो रहा है। इन परिस्थितियों में 20वीं शताब्दी के मध्य में नारीवादी आन्दोलन की द्वितीय लहर की शुरूआत हुई। फ्रान्स की बुद्धिजीवी एवं सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्त्ता सिमोन द बुआ (Simon de Beauvior) इस नये महिला आन्दोलन की बहुचर्चित नारीवादी समर्थक बनी। उनकी पुस्तक 'दि सेकेंड सेक्स' (1949) ने दर्शनशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान और मानवशास्त्र का सहारा लेकर यह स्थापित किया कि स्त्रियों का दमन इतिहास और संस्कृति की उपज है, और इसे एक प्राकृतिक प्रक्रिया द्वारा नही समझा जा सकता। उनका कहना था कि 'औरत पैदा नहीं होती, बल्कि बना दी जाती है।' अर्थात स्त्री–सुलभ गुण–दोष या व्यक्त्वि, लिंग भेद के प्राकृतिक आधार पर नही बल्कि संस्कार और सीख के सामाजिक आधार पर बनती है।[9]

1963 में बैटी फ्रीडन की पुस्तक 'द फेमिनाइन मिस्टिक' ने नारीवादी आन्दोलन की एक नई दिशा दी। फ्रीडन ने अमेरीका में अपने तथ्यपरक शोध में यह जानने की कोशिश की कि स्त्रियां अपनी स्थिति से सन्तुष्ट क्यों नही है। उससे ऐसा लगा कि महिलाओं की समस्या का समाधान केवल राजनीतिक और कानूनी रूप में नही किया जा सकता इसलिये नारीवादी विचार अधिक क्रान्तिकारी बनते गये। लगभग उसी समय में मेरी एलमैन की पुस्तक 'थिंकिंग एबाउट वुमेन' (1968), एस0 फायरस्टोन की ' द डायलेक्टिक्स ऑफ सेक्स' (1972), केट मिलेट की 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' (1969) और जे0 मिचैल की 'वूमेन : द लॉगेंस्ट रिवोल्यूशन' (1974) जैसी पुस्तकें प्रकाशित हुई जिसमें नारीवाद के व्यक्तिगत, मानसिक एवं लैंगिक पक्ष पर अधिक बल दिया गया। सन् 1980 के बाद के दशकों में नारीवादी सामाजिक राजनीतिक सिद्धान्त पर उत्तर संरचनावादी और उत्तर आधुनिकतावादी विश्लेषण का प्रभाव पड़ा। उत्तर आधुनिकतावादियों का अनुसरण करते हुये नारीवादी सिद्धान्तकारों ने कहा कि पारम्परिक नारीवादी विश्लेषण पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरीका की श्वेत मध्यम वर्ग की महिलाओं से भरा पड़ा है। इसमें निम्न वर्ग और अष्वेत महिलाओं का नाम मात्र का कही–कही जिक्र देखने को मिलता है। नारीवाद की तृतीय लहर ने सार्वभौमिक परिप्रेक्ष्य की अवहेलना करते हुये स्थानीय स्तर पर महिलाओं की समस्याओं को उजागर किया है।

नारीवाद की प्रमुख धाराएँ

नारीवादी सिद्धान्त प्रवृत्ति, अर्न्तवस्तु और प्रभावों के बारें में भिन्नता रखते हैं। विभिन्न सैद्धान्तिक और दार्शनिक परिप्रेक्ष्यों में अवस्थित नारीवादी आन्दोलन के अन्तर्गत अनेक प्रकार के विचार और कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये हैं। समकालीन नारीवाद राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, लैंगिक, नैतिक और नस्लीय आयामों को अपने अन्दर समाहित करने की ओर बढ़ा है। मोटे तौर पर इस आन्दोलन की तीन प्रमुख धाराओं की पहचान कर सकते हैंः–

1. उदारवादी नारीवाद (Liberal Feminism)
2. समाजवादी–मार्क्सवादी नारीवाद (Socialist Marxist Feminism)
3. आमूल परिवर्तनवादी अथवा अतिवादी नारीवाद (Redical Feminism)

1. उदारवादी नारीवादः–उदारवादी नारीवादी परिप्रेक्ष्य ने आजादी और समानता के लोकतान्त्रिक मूल्य और औरत की अधीनता के बीच के अन्तर्विरोध को रेंखाकित किया। इसमें लिंग के आधार पर भेदभाव के पूर्ण निराकरण पर बल दिया जाता है। इसके मुख्य कार्यक्रम हैंः–महिलाओं की समानता, कानूनी सुधारों की माँग, समान अवसरों तक पहुँच, समान कार्य के लिये समान वेतन इत्यादि।

2. समाजवादी–मार्क्सवादी नारीवादः–समाजवादी–मार्क्सवादी नारीवाद उस विचारधारात्मक परम्परा से सम्बद्ध है जिसमें काल्पनिक समाजवाद से लेकर मार्क्सवाद तक के केन्द्रीय तत्वों को लिया गया है। इसका दावा है कि स्त्रियों की पराधीनता के सारे कारण मिलें–जुलें हैं। समाजवादी नारीवादी महिलाओं ने पूंजीवादी पितृसत्ता को समझने और बदलने का प्रयास किया है। समाजवादी नारीवाद का मानना है कि पूंजीवाद और पितृसत्ता एक दूसरे को मजबूती प्रदान करते है।

समाजवादी–मार्क्सवादी नारीवादी यह नहीं मानते कि स्त्रियों की समस्या राजनीतिक और कानूनी रूप से समाप्त हो सकती है। उनके अनुसार स्त्री–पुरूश की असमानता का मूल कारण सामाजिक–आर्थिक संरचना है जो एक सामाजिक क्रान्ति के बिना समाप्त नहीं सकती। समाजवादी नारीवादी यह मानते हैं कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था को सामाजिक–आर्थिक कारको के संदर्भ में समझना चाहिए।

फ्रेडरिक एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'द ओरिजिन ऑफ फैमिली, प्राईवेट प्रोपर्टी एंड द स्टेट' (1884) में यह स्पष्ट किया है कि स्त्रियों की स्थिति पूंजीवाद के विकास और निजी सम्पत्ति के संस्था के आगमन के साथ पूर्णतया परिवर्तित हो गई है। पूर्व पूंजीवादी व्यवस्थाओं में सम्पत्ति सामान्यतः पूरे परिवार या समुदाय की मानी जाती थी। पूंजीवाद के आगमन के साथ निजी सम्पत्ति पर पुरूषों ने अपना वर्चस्व जमाया और स्त्रियां इससे वंचित रह गयीं। औद्योगिक पूंजीवाद के उदय के साथ पुरूष घरो के बाहर उजरती (Waged) मजदूरी की अर्थव्यवस्था में शामिल होते गये और महिलायें घरो तक सीमित होती गईं। पूंजीवादी व्यवस्था में स्त्री को श्रम का स्रोत मानकर उसका शोषण किया जाता है। मार्क्सवादी मानते हैं कि स्त्रियों की दशा सुधारने के लिये पूंजीवाद और निजी सम्पत्ति को समाप्त करने की आवष्यकता है। अगर सामाजिक

क्रान्ति होती है तो समस्याएं स्वतः ही समाप्त हो जायेगी। मार्क्सवादी मानते है कि स्त्रियों को वर्ग–युद्ध को अधिक महत्व देना चाहिये, लैंगिक युद्ध को नहीं जिससे पूंजीवादी व्यवस्था का उन्त करके समाजवादी व्यवस्था स्थापित की जाए ताकि अलगाव व शोषण से मुक्त वर्गहीन समाज की स्थापना की जा सके।

3. आमूल–परिवर्तनवादी अथवा अतिवादी नारीवादः–अतिवादी (रेडिकल) नारीवादी सिद्धान्त में पुरूषों द्वारा महिलाओं के उत्पीड़न को समाज में व्याप्त सब प्रकार के सत्ता सम्बन्धों की गैरबराबरी की जड़ में देखा जाता हैं रेडिकल नारीवादियों के हिसाब से महिलाओं की यौनिकता और प्रजनन की उनकी क्षमता दोनो महिलाओं की शक्ति और उनके उत्पीड़न के जड़ में होती है।

1960 व 1970 के दशक के दौरान आधुनिक रेडिकल नारीवादी सिद्धान्त के उदय में तीन पुस्तकों ने अहम भूमिका अदा की। पहली थी सिमोन द बुआ की 'द सेकेण्ड सेक्स' जो 1949 में फ्रेंच में और 1953 में अंग्रेजी में प्रकाशित हुई तथा कैट मिलेट की 'सेक्सुअल पालिटिक्स' (1970) और शुलामिथ फायरस्टोन की 'द डायलेक्टिक ऑफ सेक्स : द केस फार फेमिनिस्ट रिवोल्युशन' (1972)।

फायर स्टोन ने तर्क दिया है कि वर्तमान व्यवसथा में छिटपुट सुधारों के बल पर स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार की जड़ तक नही पहुँचा जा सकता। जीव वैज्ञानिक दृष्टि से लड़के–लड़कियों की मानसिक क्षमता में कोई फर्क नहीं है। यदि समाज चाहे तो दोनों की भूमिकाएं आपस में बदली जा सकती हैं। इस विचारधारा के अनुसार स्त्री के शोषण का अन्त करने का सही तरीका यह होगा कि लिंग पर आधारित श्रम–विभाजन को समाप्त कर दिया जाय। इसके लिए परंपरागत मूल–परिवार का पुर्नगठन करना होगा और अन्ततः उसे समाप्त कर देना होगा। कई रेडिकल नारीवादियों ने स्त्रियों की ऐसी स्वायत्त बस्तियां बसाने की हिमायत की है जिनमें उनके उत्पीड़न के मूल स्रोत–पुरूष के लिये कोई जगह नहीं होगी। मानव जाति को समाप्त होने से बचाने के लिये यहाँ केवल पुरूषत्व का इस्तेमाल किया जायेगा, उसे प्रधान भूमिका निभाने का कोई अवसर नहीं दिया जोयेगा।

निष्कर्ष

नारीवाद राजनीतिक चिन्तन की एक प्रमुख अवधारणा बन चुका है। यह राजनीति विज्ञान की मूल अवधारणाओं न्याय, अधिकार, समानता, स्वतन्त्रता, नागरिकता व अन्य लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं को स्त्रियों के मुद्दों से जोड़कर ऐसे सभ्य व समतावादी समाज की स्थापना पर जोर देता है जिसमें विभेद की स्थिति को समाप्त किया जा सकें। एक ओर जहाँ यह उदारवादी राजनीतिक विचारधारा को चुनौती दे रहा है तो दूसरी और अप्रांसगिक होती समाजवादी–मार्क्सवादी विचारधारा के स्थान पर एक वैकल्पिक आदर्श राजनीतिक व्यवस्था के निर्माण की कल्पना करता हैं इसके अनुसार यह नया आदर्श समाज तभी स्थापित हो सकता है, जब उसका निर्माण स्त्री को केन्द्र में रखकर किया जाए और राजनीति की सभी अवधारणाओं को स्त्रियों के सन्दर्भ में परिभाषित किया जाये। नारीवादी यह भी मानते हैं कि उनका उद्देश्य स्त्रियों को पुरूष के समान

बनाना नहीं है, अपितु प्राकृतिक विभेद को स्वीकार करते हुए उनकी सामर्थ्य का सम्पूर्ण उपभोग करने तथा समाज के द्वारा प्रस्थापित कृत्रिम असमानताओं को दूर करने का प्रयास है।

सन्दर्भ

1. सिल्विया वेबले, 'थियोराइजिंग पैट्रियार्की' कॉक्सफोर्ड, बेसिल ब्लैकवैल, 1990

2. गर्डा लर्नर, 'क्रिएशन ऑफ पैट्रियार्की' ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1986

3. प्रो0 सुब्रत मुखर्जी, डॉ0 सुशीला रामास्वामी, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विष्वविद्यालय, दिल्ली, 2000, पृ0 92–93 से उदधृत

4. वही, पृ0 96

5. मेरी वोल्स्टोन क्राफ्ट, विंडीकेशन ऑफ द राइट ऑफ वूमेन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली से प्रकाशित 'नारीवादी राजनीति : संघर्श एवं मुद्दे' (2006) के मालती सुब्रहमणयम के लेख से उदधृत, पृ0 24

6. जॉन बी0 लैडस, वूमैन एण्ड द पब्लिक स्फेयर इन द ऍज ऑफ फ्रेन्च रिवोल्युशन, कार्नल विश्वविद्यालय प्रेस, इथाका 1988, पृ0 2–3

7. प्रो0 सुब्रत मुखर्जी, डॉ0 सुशीला रामास्वामी, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2000, पृ0 310 से उदधृत

8. वही पष्0 312

9. 'नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे' हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2006, पृ0 110–111